बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
BENGALURU CITY UNIVERSITY

काव्य सुधा

पाठ्य पुस्तक

बी.काम/बी.काम (आनर्स) /बी.काम (इंशोरन्स) तथा एस.ई.पी अधीन सभी बी.काम कोर्स

BCom/BCom (Honours)/ /BCom (Insurance) and all BCom Courses under SEP

द्वितीय सेमिस्टर / Second Semester

संपादक

प्रो. शेखर
प्रो. प्रभु उपासे
डॉ. सुधामणी एस.

प्रकाशक

प्रसारांग
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु-560001

KAVYA SUDHA

Edited By:

Prof. Shekhar, Prof, Prabhu Upase &

Dr.Sudhamani S.

© बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण - 2024

Pages – 59

प्रधान संपादक

प्रो.शेखर

मूल्यः-

प्रकाशक

प्रसारांग

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु-560001

भूमिका

बेंगलुरु नगर विश्वविद्यालय में 2024-25 शैक्षिक वर्ष से एसईपी-2024 नियम (पद्धति) के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा है।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात हिंदी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सके कि साहित्य का विश्लेषण और सराहना कैसे किया जाए और दिए गए पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए, ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली-भांति परिचित हो सके। जैसे विज्ञान और आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी है। एसईपी सेमेस्टर (सीबीसीएस) पद्धति के अनुसार यह पाठ्यक्रम निर्माण किया गया है।

इस पृष्ठभूमि में हिंदी अध्ययन मंडल ने विभाग अध्यक्ष प्रो. शेखर के मार्गदर्शन में पाठ्यपुस्तक का निर्माण किया है।

विश्वास है कि यह काव्य संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाजशास्त्रीय विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

प्रो.लिंगराज गांधी

कुलपति

बेंगलुरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु - 560 001

प्रधान संपादक की कलम से......

बेंगलुरु नगर विश्वविद्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नए-नए विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को नई एसईपी-2024 नीति के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

एसईपी सेमेस्टर पद्धति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले संपादकों के प्रति मैं आभारी हूं।

इस नई पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय प्रोफेसर लिंगराज गांधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पाठ्यक्रम को राज्य शिक्षा नीति के ध्येयोद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है। काव्य के विविध आयामों को इस पाठ्य पुस्तक में शामिल किए गए हैं। आशा है की सभी विद्यार्थी गण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

प्रो.शेखर

अध्यक्ष (बी.ओ.एस)

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु - 560001

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	कविता का नाम	रचनाकार	पृ.सं.
1.	तुलसी के दोहे	तुलसीदास	6-9
2.	मीरा के पद	मीराबाई	10-12
3.	वृंद के दोहे	वृंद	13-14
4.	15 अगस्त 1947	सुमित्रानंदन पंत	15-19
5.	आग की भीख	रामधारी सिंह दिनकर	20-24
6.	राख ही जानती है जलने का ताप (अनूदित)	डा. मूड्नाकूडु चिन्नस्वामी	25-28
7.	जरूर जाऊंगा कलकत्ता	जितेंद्र श्रीवास्तव	29-32
8.	वहीं से आऊंगा	अशोक वाजपेयी	33-38
9.	उस दिन का जंगल	लीलाधर जगूड़ी	39-41
10.	मोची राम	धूमिल	42-51
	भावार्थ *(व्याकरणः अ) पत्र लेखनः आवेदन, पूछताछ,आदेश, शिकायती। ब) संक्षेपण)*		52-59

तुलसी के दोहे

-तुलसीदास

कवि परिचयः तुलसीदास जी का जन्म 1511 ईस्वी (वि.संवत् 1568) कासगंज उत्तर प्रदेश भारत में हुआ था। उनका बचपन का नाम राम बोला था। तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। उनकी पत्नी का नाम रत्नावली था। तुलसीदास जी के पुत्र का नाम तारक था। तुलसीदास जी के गुरु का नाम नरसिंह दास था। रामचरितमानस, वैराग्य संदीपनी, हनुमानबाहुक, कवितावली आदि तुलसीदास जी की प्रमुख रचनाएं हैं। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस की रचना 1631 में चैत मास की रामनवमी से लेकर 1633 में मार्ग शीर्ष के बीच की थी। उनकी मृत्यु 1623 ई0 (संवत 1680 वि0) में हुई। मृत्यु के समय 112 साल/वर्ष के थे।

1

'तुलसी' देखि सुबेषु भूलहिं, मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन, सुधा सम असन अहि।।

शब्दार्थः मूढ़- मूर्ख; चतुर- अपना मतलब निकालनेवाला; नर- पुरुष, मर्द, मनुष्य; बचन- वचन, बात; सुधा- अमृत।

2

रामहि सुमिरत रन भिरत, देत परत गुरु पायँ।
'तुलसी' जिन्हहि न पुलक तनु, ते जग जीवत जाएँ।।

शब्दार्थः रन - लड़ाई, युद्ध, जंग; गुरु - पूज्य पुरुष, शिक्षक; पुलक - हर्ष, भय आदि मनोविकारों की प्रबलता में रोंगटे खड़े होना, रोमांच; तनु - देह, शरीर; जग - संसार, जगत्।

3

लहइ न फूटी कौड़िहू, को चाहै केहि काज।
सो 'तुलसी' महँगो कियो, राम ग़रीबनिवाज।।

शब्दार्थः लहइ - अल्प, कम; काज - कार्य, काम; तुलसी - तीक्ष्ण गंधवाला एक प्रसिद्ध पवित्र पौधा।

4

गंगा जमुना सुरसती, सात सिंधु भरपूर।
'तुलसी' चातक के मते, बिन स्वाती सब धूर।।

शब्दार्थः गंगा - भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध एवं पवित्र नदी जिसे लाने का श्रेय भगीरथ को माना गया है; जमुना - पवित्र नदी का नाम; सात सिंधु - सात पवित्र नदियाँ; भरपूर - परिपूर्ण; चातक - पपीहा पक्षी; धूर - धूल।

5

मुखिया मुखु सो चाहिऐ खान, पान कहुँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अंग, 'तुलसी' सहित बिबेक।।

शब्दार्थः मुखिया - प्रधान, सभापति (जैसे–गाँव/दल का मुखिया); मुखु - प्राणी का मुँह; खान - खाने की क्रिया; पोषइ - पोषण करनेवाला।

6

राम-नाम-मनि-दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
'तुलसी' भीतर बाहिरौ, जौ चाहसि उजियार।।

शब्दार्थः देहरी - दहलीज़; द्वार - दरवाज़ा (जैसे–प्रवेश द्वार); उजियार - उज्जवल।

7

बचन बेष क्या जानिए, मनमलीन नर नारि।
सूपनखा मृग पूतना, दस मुख प्रमुख विचारि।।

शब्दार्थः बचन - वचन, बात; बेष - अच्छा, श्रेष्ठ, बढ़िया; सूपनखा - एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की बहिन थी; मृग - हिरन; दस - नौ से एक अधिक।

8

'तुलसी' काया खेत है, मनसा भयौ किसान।
पाप-पुन्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान।।

शब्दार्थः काया - शरीर, देह; पाप - अपराध, धर्म एवं नीति विरुद्ध किया जानेवाला आचरण; पुन्य - अच्छा / भला कार्य; निदान - अंत में।

9

दंपति रस रसना दसन, परिजन बदन सुगेह।
'तुलसी' हर हित बरन सिसु, संपति सहज सनेह।।

शब्दार्थः दंपति - पति-पत्नी का जोड़ा; रस - स्वाद; रसना - खुश होना, रस मग्न होना; दसन - दाँत; परिजन - परिवार के सदस्य बदन - मुख; संपति - धन-दौलत और जायदाद आदि जो किसी के अधिकार में हो।

10

असन बसन सुत नारि सुख, पापिहुँ के घर होइ।
संत - समागम रामधन, 'तुलसी' दुर्लभ दोइ।।

शब्दार्थः संत-समागम - सज्जन और महात्मा का एकत्र होना; दुर्लभ - कठिनता से प्राप्त होनेवाला।

11

तुलसी भलो सुसंग तें, पोच कुसंगति सोइ।
नाउ किंनरी तीर असि, लोह बिलोकहु लोइ।।

शब्दार्थः पोच - बुरा, निर्बल; किंनरी - मधुर संगीत सुनाने वाला; असि - तलवार; लोह - लोहा; बिलोकहु - देखना।

12

'तुलसी' काया खेत है, मनसा भयौ किसान।
पाप-पुन्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान॥

शब्दार्थः काया - शरीर; मनसा - मन; बुवै - बोना; लुनै - फसल की कटाई।

*****

मीरा के पद

-मीराबाई

कवि परिचयः मीराबाई का जन्म 1498 में राजस्थान के कुड़की गांव में हुआ था। आप कृष्ण की भक्ति में लीन एक प्रसिद्ध संत-कवियित्री थीं। बचपन से ही भक्ति में रुचि रखने वाली मीरा का विवाह 1516 में मेवाड़ के राजा भोजराज से हुआ। दांपत्य जीवन में सास-बहू के मतभेद और राज-परिवार का विरोध सहन करने के बाद, मीरा ने द्वारका में कृष्ण की मूर्ति को अपना पति मानकर जीवन भक्ति में समर्पित कर दिया।

मीरा बाई जो सोलहवीं शताब्दी में पैदा हुई एक कृष्ण भक्त और प्रसिद्ध कवयित्री थीं। आप सभी ने मीराबाई की रचनाओं में उनके दोहों के बारे में जरूर पढ़ा होगा। मीरा बाई ने अपना सम्पूर्ण जीवन भगवान कृष्ण की भक्ति में बिताया। अपने गुरु संत रविदास (रैदास) के साथ रहते हुए मीराबाई का मन सांसारिक मोह को त्याग कर कृष्ण प्रेम और कृष्ण भक्ति में रमता था।

कृष्ण भक्ति में रमते हुए मीरा बाई की रचनाएं इस प्रकार से हैं - नरसी जी का मायरा, मीरा पद्मावली, राग सोरठा, गोविंद टीका, राग गोविंद, गीत गोविंद।

1

भज मन! चरण-कँवल अविनाशी।
जेताई दीसै धरनि गगन विच, तेता सब उठ जासी।।
इस देहि का गरब ना करणा, माटी में मिल जासी।।

यों संसार चहर की बाजी, साझ पड्या उठ जासी।।
कहा भयो हैं भगवा पहरया, घर तज भये सन्यासी।
जोगी होई जुगति नहि जांनि, उलटी जन्म फिर आसी।।
अरज करू अबला कर जोरे, स्याम! तुम्हारी दासी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर! काटो जम की फांसी।।

2

पग घूँघरू बाँध मीरा नाची रे।
मैं तो मेरे नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
लोग कहै मीरा भई बावरी न्यात कहै कुलनासी रे॥
विष का प्याला राणाजी भेज्या पीवत मीरा हाँसी रे।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर सहज मिले अविनासी रे॥

3

पतीया मैं कैशी लीखूं, लीखये न जातरे॥
कलम धरत मेरा कर कांपत। नयनमों रड छायो॥
हमारी बीपत उद्धव देखी जात है। हरीसो कहूं वो जानत है॥
मीरा कहे प्रभु गिरिधर नागर। चरणकमल रहो छाये॥

4

हरि तुम हरो जन की भीर।
द्रोपदी की लाज राखी, तुम बढायो चीर।।
भक्त कारण रूप नरहरि, धरयो आप शरीर।
हिरणकश्यपु मार दीन्हों, धरयो नाहिंन धीर।।

बूड़ते गजराज राखे, कियो बाहर नीर।
दासि 'मीरा लाल गिरिधर, दु:ख जहाँ तहँ पीर।।

5

मीरा मगन भई, हरि के गुण गाय।
सांप पेटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दीयों जाय।
न्हाय धोय देखण लागीं, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमरित दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो गई अमर अंचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुवाय।

*****

वृंद के दोहे

-वृंद

कवि परिचयः वृंद जी का जन्म 1643 ईसवी में राजस्थान के जोधपुर जिले के मेड़ता नामक गांव में हुआ था। इनका पूरा नाम वृन्दावनदास था। वृन्द जी की माता का नाम कौशल्या था और पत्नी का नाम नवंरगदे था। अपनी 10 साल की उम्र में वृन्द जी काशी आए थे और यहीं पर इन्होंने तारा जी नाम के एक पंडित से साहित्य, दर्शन की शिक्षा प्राप्त की थी। इसके साथ ही वृन्द जी को व्याकरण, साहित्य, वेदांत, गणित आदि का ज्ञान प्राप्त किया और काव्य रचना सीखी। वृन्द जी ने अपनी रचनाएं सरल, सुगम, मधुर और आसान भाषा में लिखी हैं। वृन्द जी कविता करने का शौक, अपने पिता से आया। इनके पिता भी कविता लिखा करते थे। हिन्दी साहित्य के महान कवि वृन्द जी मुगल सम्राट औरंगजेब के दरबारी कवि भी थे।

इनकी प्रमुख रचनाओं में 'वृंद-सतसई, 'पवन-पचीसी, 'श्रंगार-शिक्षा, अलंकार सतसई, भाव पंचाशिका, रुपक वचनिका, सत्य स्वरूप और 'हितोपदेश मुख्य हैं। 'वृंद-सतसई कवि वृन्द जी की सबसे प्रसद्धि रचनाओं में से एक है जो नीति साहित्य का श्रंगार है। जिसमें 700 दोहे हैं, इसकी भाषा अत्यंत सरल और सुगम है जो कि आसानी से समझी जा सकती है। इन्होंने अपनी रचनाओं में कहावतों और मुहावरों का भी सुंदर ढंग से इस्तेमाल किया है।

1

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते सिल पर परत निशान।।

2

अपनी पहुँच बिचारि कै, करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर।।

3

विद्या धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।
बिना झुलाए ना मिलै, ज्यौं पंखा का पौन।।

4

बात कहन की रीति में, है अंतर अधिकाय।
एक वचन तैं रिस बढ़ै, एक वचन तैं जाय।।

5

भेष बनावै सूर कौ, कायर सूर न होय।
खाल उढ़ावै सिंह की, स्यार सिंह नहिं होय।।

6

धन अरु गेंद जु खेल को दोऊ एक सुभाय।
कर में आवत छिन में, छिन में करते जाय।।

7

दान-दीन को दीजै, मिटै दरिद्र की पीर।
औषध ताको दीजै, जाके रोग शरीर।।

8

अंतर अंगुरी चार को, सांच झूठ में होय।
सब माने देखी कही, सुनी न माने कोय।।

*****

15 अगस्त 1947

-सुमित्रानंदन पंत

कवि परिचयः 'प्रकृति के सुकुमार कवि' सुमित्रानंदन पंत का जन्म बागेश्वर ज़िले के कौसानी (वर्तमान उत्तराखंड) में 20 मई 1900 को हुआ। जन्म के कुछ ही घंटों बाद उनकी माता की मृत्यु हो गई और उनका लालन-पालन उनकी दादी ने किया। बचपन में उनका नाम गोसाईं दत्त रखा गया था। प्रयाग में उच्च शिक्षा के दौरान 1921 के असहयोग आंदोलन में महात्मा गाँधी के बहिष्कार के आह्वान पर उन्होंने महाविद्यालय छोड़ दिया और हिंदी, संस्कृत, बांग्ला और अँग्रेज़ी भाषा-साहित्य के स्वाध्याय में लग गए।

उनकी काव्य-चेतना का विकास प्रयाग में ही हुआ, हालाँकि नियमित रूप से कविताएँ वह किशोर आयु से ही लिखने लगे थे। उनका रचनाकाल 1916 से 1977 तक लगभग 60 वर्षों तक विस्तृत है। उनकी काव्य-यात्रा के तीन चरण देखे जाते हैं। 1916-35 का पहला चरण छायावादी काव्य का है जिस दौरान 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव', 'गुंजन' तथा 'ज्योत्स्ना' संग्रह प्रकाशित हुए। 'पल्लव' छायावादी सर्जनात्मकता का चरम उत्कर्ष है और इस संग्रह को उनकी प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ प्रस्फुटन माना जाता है। दूसरा चरण प्रगतिवादी काव्य का है जब मार्क्स और फ़्रायड के

प्रभाव में वह सौंदर्य-चेतना से बाहर निकल आम हाड़-माँस के आदमी की पहचान का प्रयास करते हैं। इस दौर में उनके ‘युगांत’, ‘गुण-वाणी’ और ‘ग्राम्या’ संग्रह प्रकाशित हुए। तीसरी धारा अध्यात्मवाद की है जब वह अरविंद-दर्शन के प्रभाव में आए। ‘स्वर्ण-धूलि’, ‘अतिमा’, ‘रजत शिखर’ और ‘लोकायतन’ इस चरण के संग्रह हैं जहाँ वह अध्यात्मवादी भावलोक में विचरण करते हैं। ‘युगांतर’, ‘स्वर्णकिरण’, ‘कला और बूढ़ा चाँद’, ‘सत्यकाम’, ‘मुक्ति यज्ञ’, ‘तारापथ’, ‘मानसी’, ‘युगवाणी’, ‘उत्तरा’, ‘रजतशिखर’, ‘शिल्पी’, ‘सौवर्ण’, ‘पतझड़’, ‘अवगुंठित’, ‘मेघनाद वध’ आदि उनके अन्य प्रमुख काव्य-संग्रह हैं। ‘चिदंबरा’ संग्रह का प्रकाशन 1958 में हुआ जिसमें 1937 से 1950 तक की रचनाओं का संचयन है। कविताओं के अतिरिक्त उन्होंने नाटक, उपन्यास, निबंध और अनुवाद में भी योगदान किया है।

उन्हें 1960 में 'कला और बूढ़ा चाँद' काव्य-संग्रह के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार से और 1968 में ‘चिदंबरा’ काव्य-संग्रह के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से अलंकृत किया और उनपर डाक टिकट जारी किया है।

कौसानी गाँव के उनके घर को 'सुमित्रा नंदन पंत साहित्यिक वीथिका' नामक संग्रहालय में परिणत किया गया है जहाँ उनकी व्यक्तिगत चीज़ों, प्रशस्तिपत्र, विभिन्न संग्रहों की पांडुलिपियों को सुरक्षित रखा गया है। संग्रहालय में उनकी स्मृति में प्रत्येक वर्ष

'पंत व्याख्यान माला' का आयोजन किया जाता है। कौसानी चाय बाग़ान के व्यवस्थापक के परिवार में जन्मे महाकवि सुमित्रानंदन पंत की मृत्यु 28 दिसम्बर, 1977 को इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश में हुई।

***

चिर प्रणम्य यह पुण्य अहन्, जय गाओ सुरगण,
आज अवतरित हुई चेतना भू पर नूतन!

नव भारत, फिर चीर युगों का तमस आवरण,
तरुण अरुण सा उदित हुआ परिदीप्त कर भुवन!

सभ्य हुआ अब विश्व, सभ्य धरणी का जीवन,
आज खुले भारत के सँग भू के जड़ बंधन!

शांत हुआ अब युग-युग का भौतिक संघर्षण
मुक्त चेतना भारत की यह करती घोषण!

आम्र मौर लाओ हे, कदली स्तंभ बनाओ,
ज्योतित गंगा जल भर मंगल कलश सजाओ!

नव अशोक पल्लव के बंदनवार बँधाओ,
जय भारत गाओ, स्वतंत्र जय भारत गाओ!

उन्नत लगता चंद्र कला स्मित आज हिमाचल,
चिर समाधि से जाग उठे हों शंभु तपोज्वल!

लहर-लहर पर इंद्रधनुष ध्वज फहरा चंचल,
जय निनाद करता, उठ सागर, सुख से विह्वल!

धन्य आज का मुक्ति दिवस, गाओ जन-मंगल,
भारत लक्ष्मी से शोभित फिर भारत शतदल!

तुमुल जयध्वनि करो, महात्मा गाँधी की जय,
नव भारत के सुज्ञ सारथी वह निःसंशय!

राष्ट्र नायकों का हे पुनः करो अभिवादन,
जीर्ण जाति में भरा जिन्होंने नूतन जीवन!

स्वर्ण शस्य बाँधो भू वेणी में युवती जन,
बनो बज्र प्राचीर राष्ट्र की, मुक्त युवकगण!

लोह संगठित बने लोक भारत का जीवन,
हों शिक्षित संपन्न क्षुधातुर नग्न भग्न जन!

मुक्ति नहीं पलती दृग जल से हो अभिसिंचित,
संयम तप के रक्त स्वेद से होती पोषित!

मुक्ति माँगती कर्म वचन मन प्राण समर्पण,
वृद्ध राष्ट्र को वीर युवकगण दो निज यौवन!

नव स्वतंत्र भारत को जग हित ज्योति जागरण,
नव प्रभात में स्वर्ण स्नात हो भू का प्रांगण!

नव जीवन का वैभव जाग्रत हो जनगण में,
आत्मा का ऐश्वर्य अवतरित मानव मन में!
रक्त सिक्त धरणी का हो दुःस्वप्न समापन,
शांति प्रीति सुख का भू स्वर्ग उठे सुर मोहन!

भारत का दासत्व दासता थी भू-मन की;
विकसित आज हुईं सीमाएँ जग जीवन की!

धन्य आज का स्वर्ण दिवस, नव लोक जागरण,
नव संस्कृति आलोक करे जन भारत वितरण!

नव जीवन की ज्वाला से दीपित हों दिशि क्षण
नव मानवता में मुकुलित धरती का जीवन!

*****

आग की भीख

-रामधारी सिंह दिनकर

कवि परिचयः 'राष्ट्रकवि' के रूप में समादृत और लोकप्रिय रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 23 सितंबर 1908 को बिहार के बेगूसराय ज़िले के सिमरिया ग्राम में एक कृषक परिवार में हुआ। बचपन संघर्षमय रहा जहाँ स्कूल जाने के लिए पैदल चल गंगा घाट जाना होता था, फिर गंगा के पार उतर पैदल चलना पड़ता था। पटना विश्वविद्यालय से बी.ए. की परीक्षा पास करने के बाद आजीविका के लिए पहले अध्यापक बने, फिर बिहार सरकार में सब-रजिस्टार की नौकरी की। अँग्रेज़ सरकार के युद्ध-प्रचार विभाग में रहे और उनके ख़िलाफ़ ही कविताएँ लिखते रहे। आज़ादी के बाद मुज़फ़्फ़रपुर कॉलेज में हिंदी के विभागाध्यक्ष बनकर गए। 1952 में उन्हें राज्यसभा के लिए चुन लिया गया जहाँ दो कार्यकालों तक उन्होंने संसद सदस्य के रूप में योगदान किया। इसके उपरांत वह भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति नियुक्त किए गए और इसके एक वर्ष बाद ही भारत सरकार ने उन्हें अपना हिंदी सलाहकार नियुक्त कर पुनः दिल्ली बुला लिया।

ओज, विद्रोह, आक्रोश के साथ ही कोमल श्रृंगारिक भावनाओं के कवि दिनकर की काव्य-यात्रा की शुरुआत हाई स्कूल के दिनों से हुई जब उन्होंने रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा प्रकाशित 'युवक' पत्र में 'अमिताभ' नाम से अपनी रचनाएँ भेजनी शुरू की। 1928 में

प्रकाशित ‘बारदोली-विजय’ संदेश उनका पहला काव्य-संग्रह था। उन्होंने मुक्तक-काव्य और प्रबंध-काव्य–दोनों की रचना की। मुक्तक-काव्यों में कुछ गीति-काव्य भी हैं। कविताओं के अलावे उन्होंने निबंध, संस्मरण, आलोचना, डायरी, इतिहास आदि के रूप में विपुल गद्य लेखन भी किया।

प्रमुख कृतियाँ- मुक्तक-काव्य: प्रणभंग, रेणुका, हुँकार, रसवंती, द्वंद्वगीत, सामधेनी, बापू, धूप-छाँह, इतिहास के आँसू, धूप और धुआँ, मिर्च का मज़ा, नीम के पत्ते, सूरज का ब्याह, नील-कुसुम, हारे को हरिनाम सहित दो दर्जन से अधिक संग्रह।

प्रबंध-काव्य: कुरुक्षेत्र (1946), रश्मिरथी (1951), उर्वशी (1961)

गद्य : मिट्टी की ओर, रेती के फूल, संस्कृति के चार अध्याय, उजली आग, वेणुवन, शुद्ध कविता की खोज, हे राम!, संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ, मेरी यात्राएँ, दिनकर की डायरी, विवाह की मुसीबतें सहित दो दर्जन से अधिक कृतियाँ।

रामधारी सिंह दिनकर को ‘संस्कृति के चार अध्याय’ पुस्तक के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार से और काव्य-कृति ‘उर्वशी’ के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने उन्हें ‘पद्म भूषण’ से अलंकृत किया। उनकी स्मृति में भारत सरकार द्वारा डाक-टिकट भी जारी किया गया। उनका निधन 24 अप्रैल 1974 चेन्नई, तामिलनाडु हुआ।

***

आग की भीख

धुँधली हुईं दिशाएँ, छाने लगा कुहासा,
कुचली हुई शिखा से आने लगा धुआँ-सा।
कोई मुझे बता दे, क्या आज हो रहा है;
मुँह को छिपा तिमिर में क्यों तेज़ रो रहा है?
दाता, पुकार मेरी, संदीप्ति को जिला दे;
बुझती हुई शिखा को संजीवनी पिला दे।
प्यारे स्वदेश के हित अंगार माँगता हूँ।
चढ़ती जवानियों का श्रृंगार माँगता हूँ।

बेचैन हैं हवाएँ, सब ओर बेकली है,
कोई नहीं बताता, किश्ती किधर चली है?
मँधार है, भँवर है या पास है किनारा?
यह नाश आ रहा या सौभाग्य का सितारा?
आकाश पर अनल से लिख दे अदृष्ट मेरा,
भगवान, इस तरी को भरमा न दे अँधेरा।
तम-वेधिनी किरण का संधान माँगता हूँ।
ध्रुव की कठिन घड़ी में पहचान माँगता हूँ।
आगे पहाड़ को पा धारा रुकी हुई है,
बल-पुंज केसरी की ग्रीवा झुकी हुई है,
अग्निस्फुलिंग रज का, बुझ, ढेर हो रहा है,

है रो रही जवानी, अँधेरा हो रहा है।
निर्वाक है हिमालय, गंगा डरी हुई है;
निस्तब्धता निशा की दिन में भरी हुई है।
पंचास्य-नाद भीषण, विकराल माँगता है।
जड़ता-विनाश को फिर भूचाल माँगता है।

मन की बँधी उमंगें असहाय जल रही हैं,
अरमान-आरजू की लाशें निकल रही हैं।
भींगी-खुली पलों में रातें गुज़ारते हैं,
सोती वसुंधरा जब तुझको पुकारते हैं।
इनके लिए कहीं से निर्भीक तेज़ ला दे,
पिघले हुए अनल का इनको अमृत पिला दे,
उन्माद, बेकली का उत्थान माँगता हूँ।
विस्फोट माँगता हूँ, तूफ़ान माँगता हूँ।

आँसू-भरे दृगों में चिनगारियाँ सजा दे,
मेरे श्मशान में आ श्रृंगी ज़रा बजा दे;
फिर एक तीर सीनों के आर-पार कर दे,
हिमशीत प्राण में फिर अंगार स्वच्छ भर दे।
आमर्ष को जगानेवाली शिखा नई दे,
अनुभूतियाँ हृदय में दाता, अनलमयी दे।
विष का सदा लहू में संचार माँगता हूँ,
बेचैन ज़िंदगी का मैं प्यार माँगता हूँ।

ठहरी हुई तरी को ठोकर लगा चला दे,
जो राह हो हमारी उस पर दिया जला दे।
गति में प्रभंजनों का आवेग फिर सबल दे;
इस जाँच की घड़ी में निष्ठा कड़ी, अचल दे।
हम दे चुके लहू हैं, तू देवता, विभा दे,
अपने अनल-विशिख से आकाश जगमगा दे।
प्यारे स्वदेश के हित वरदान माँगता हूँ,
तेरी दया विपद् में भगवान, माँगता हूँ।

*****

राख ही जानती है जलने का ताप

(अनुवादित कविता)

मूल कन्नड़:- डॉ. मूड्नाकूडु चिन्नस्वामी

अनुवाद: डॉ. एन. देवाराज

डॉ.मूड्नाकूडु चिन्नस्वामीः- कन्नड़ के वरिष्ठ कवि, लेखक और आलोचक डॉ. मूड्नाकूडु चिन्नस्वामी का जन्म उन्नसी सौ चौवन में चामराजनगर जिले में हुआ। मुख्य रूप से आपकी रुचि कविता होने के बावजूद आपने कहानी, नाटक, अनुवाद, संपादन साहित्य के अलावा साहित्य के विभिन्न विधाओं में काम किया है। अब तक आपकी चालीस रचनाएँ प्रकाशित हैं।

आपकी कविताओं का अनुवाद अंग्रेजी , हिन्दी, स्पेनिश, फ्रेंच और हिब्रू सहित कई भारतीय भाषाओं में हुई है। आपकी कई कविता और नाटक को स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में पढाया जा रहा है। आपको कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। उनमें .कर्नाटक साहित्य अकादमी पुरस्कार(२००९), कर्नाटक राज्योत्सव पुरस्कार (२०१४) और आपके 'बहुत्व भारत और बौद्ध दर्शन' रचना के लिए प्रतिष्ठित 'केन्द्र साहित्य अकादमी' पुरस्कार(२०२२) आदि प्रमुख हैं। आपकी अंग्रेजी की पहली रचना ' दलित कास्मस ' ब्रिटन के रौउट्लेज संस्था की ओर से २९२३ में प्रकाशित हैं। 'द आउटलुक' अंग्रेजी साप्ताहिक ने अपने २६

अप्रैल, २०२१ के विशेषांक के सर्वेक्षण में अंबेडकर पर एक संक्षिप्त परिचय प्रकाशित।

डॉ.एन.देवराजः- हिन्दी तथा कन्नड के युवा कवि, कहानीकार एवं अनुवादक का जन्म 30सितंबर1974 को बेंगलूरु में हुआ। फिलहाल मोरार्जी देसाई आवासीय पाठशाला, बेंगलूरु में प्रधानाचार्य के रूप में कार्यरत हैं।

उपलब्धियाँ:- नानु बुद्धनागुवुदिल्ला, कोड़ी बिद्दिदे कण्णिगे कविता संकलन (कन्नड) कनकदासरु मत्तु सूरदासरु तात्विक नेलेगळु, हिन्द स्वराज (आलोचना) (हिन्दी से अनूदित), मज्जेयोळगण किच्छु, जंगल तंत्रम, दर्दपुर (उपन्यास, हिन्दी से अनूदित), व्याघ्र वेशी नाटक, हाथी पालने जो चली(कन्नड से हिन्दी में अनूदित), भारतीय भक्ति आंदोलन,(हिंदी में लिखी बहु चर्चित किताब)बीस कहानियों का अनुवाद (कन्नड और हिन्दी में कन्नड के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो. एस .जी.सिद्दरामय्या, प्रतिभा नंदकुमार, जयश्री कंबार, मूड़नाकूडु चिन्नस्वामी जी की कविताओं का अनुवाद। आकाशवाणी बेंगलूर 'प्रसार भारती सर्वभाषा कवि सम्मेलन' के लिए(कन्नड और हिन्दी भाषा में) पाँच हिन्दी एकांकी और निबन्धों का अनुवाद, डॉ. बाबू जगजीवनराम अध्ययन और संशोधन केन्द्र, मैसूर विश्ववदियालय, मैसूर के लिए श्रीमति इन्द्राणी देवी जी द्वारा संकलित "देखी सुनी बीती बातें" खं- क और दो, बाबू जगजीवनराम जी के भाषणों का अनुवाद, बसव

मार्ग के लिए शरण साहित्य के लेखों का अनुवाद आदि आपकी साहित्यिक साधना है।

पुरस्कार: "साइबर क्राइम" के अनुवाद के लिए 'राष्ट्रीय पुरस्कार', "जंगल तंत्रम" उपन्यास के लिए 'लाल बहादूर शास्त्री अनुवाद पुरस्कार ''कुवेम्पु स्मारक साहित्य रत्न' 'सावित्री बाई फुले' पुरस्कार, राष्ट्रीय चेतना परिवार से 'गुरु द्रोणाचार्य' पुरस्कार प्राप्त हैं। आपके साहित्यिक देन को मद्दे नज़ रखते कर्नाटक सरकार ने सन 2016 से 2019 तक कुवेंपू भाषा भारती प्राधिकार का सदस्य नियुक्त किया था।

राख ही जानती है जलने का ताप

बन्धुआ मजदूर थे मेरे दादा एक बार
प्यासे जानवरों को तालाब के किनारे छोडकर
खुद भी अंजुली भर पी लिया जल
गाँव भर फैल गई यह खबर कि
तालाब मैला हो गया
मालिक लोगों ने उसे पकड़
पुआल में डाल जिन्दा जला दिया।

उस जली राख को ढो न सकने से भूमाता
गरजकर वज्राघात से बिलख-बिलखकर रो पड़ी तब
आसमान मालिक ने बरसात वन आके सांत्वना दिया तब
राख से ढके अंगार के रूप में

पिता का जन्म हुआ।

फिर बन्धुआ मजदूर बने मेरे पिता ने अपने पिता को याद कर
वैसी ही एक संतान की अपेक्षा करते
मंदिर के आँगन में हाथ फैलाकर साष्टांग नमस्कार किया
गाँव भर फैल गया यह खबर कि
भगवान मैले हो गये
मालिक लोगों ने झोंपड़ी में आग लगाकर
सोते हुए बाप की हड्डियों को जला दिया।

फिर उस राख को न ढो सकने से
भूमाता भूकंपन द्वारा सिसक-सिसककर रो बैठी तब
सागर ने बाढ बन आके सांत्वना दी तब
ज्वालामुखी के रूप में
मैं पैदा हुआ।

अब मुझे वे जला नहीं सकते
मुझे पकड़ने आकर वे खुद जल जायेंगे
क्योंकि मैं
अज्ञान को जलाने वाला अक्षर बन गया हूँ!
मौत रहित सत्य के लिये साक्षी बन गया हूँ!!

*****

ज़रूर जाऊँगा कलकत्ता

-जितेंद्र श्रीवास्तव

कवि परिचयः जन्म : 8 अप्रैल 1974 उत्तर प्रदेश के देवरिया में। प्रगतिशील और नई कविता धारा में आप की कविताएँ प्रकाशित हैं।

प्रकाशन : इन दिनों हालचाल, अनभै कथा, असुन्दर सुन्दर (कविता); भारतीय समाज की समस्याएँ और प्रेमचन्द, भारतीय राष्ट्रवाद और प्रेमचन्द, शब्दों में समय, आलोचना का मानुष-मर्म (आलोचना)।

पुरस्कार/सम्मान : हिन्दी अकादमी दिल्ली का 'कृति सम्मान', उ.प्र. हिन्दी संस्थान का 'रामचन्द्र शुक्ल पुरस्कार', 'भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार', उ.प्र. हिन्दी संस्थान का 'विजयदेव नारायण साही पुरस्कार', 'देवीशंकर अवस्थी आलोचना सम्मान' आदि। इस कविता के लिए कवि को भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

अभी और कितनी दूर है कलकत्ता
यही कलकत्ता
जहाँ पहुँचे थे कभी अपने मिर्ज़ा ग़ालिब
और लौटे थे
ज़ेहन में आधुनिकता लेकर

मैंने कितनी-कितनी बार दुहराया है
वह शे'र
किसी सबक़ की तरह
जिसमें दुविधा के बीच
जीवन की राह तलाशता है शाइर

वहाँ सवाल ईमान और कुफ़्र का नहीं
वहाँ सवाल धर्मी और विधर्मी का नहीं
वहाँ सवाल एक नई रोशनी का है

ग़ालिब की यात्रा के सैकड़ों साल बाद
मैं हिंदी का एक अदना-सा कवि
जा रहा हूँ कलकत्ता

मन में गहरी बेचैनी है
इधर बदल गए हैं हमारे शहर
वहाँ अदृश्य हो रहे हैं आत्मा के वृक्ष
अब कोई आँधी नहीं आती
जो उड़ा दे भ्रम की चादर

यह जादुई विज्ञापनों का समय है
यह विस्मरण का समय है
इस समय रिश्तों पर बात करना
प्रागैतिहासिक काल पर बात करने जैसा हो गया है

हमारे शहर बदल गए हैं
कलकत्ता भी बदल गया होगा
पर अभी कितनी दूर है वह
बैठे-बैठे पिरा रही है कमर
बढ़ती जा रही है हसरत

कितना समय लगा होगा ग़ालिब को
वहाँ पहुँचने में
महज़ देह नहीं
आत्मा भी दुखी होगी उनकी

उनके लिए कलकत्ता महज़ एक शहर नहीं था
उनकी यात्रा किसी सैलानी की यात्रा न थी

जब हम देखते हैं किसी शहर को
वह शहर भी देखता है हमको
कलकत्ते ने देखा होगा हमारे महाकवि को
उसके आँसुओं को
उसकी उदासी को
उसके दुख को

क्या कलकत्ते ने देखा होगा
हमारे महाकवि की आत्मा को
उसके भीतर बहती अजस्र कविता को?

मैं कलकत्ते में
कैसे पहचानूँगा उस पत्थर को
जिस पर समय से दो हाथ करता
कुछ पल सुस्ताने के लिए बैठा होगा
हमारी कविता का मस्तक
रेख़्ते का वह उस्ताद

मैं जी भर देखना चाहता हूँ कलकत्ता
इसलिए चाहे जितना पिराए कमर
चाहे जितनी सताए थकान
मैं लौटूँगा नहीं दिल्ली
ज़रूर जाऊँगा कलकत्ता।

*****

वहीं से आऊँगा

-अशोक वाजपेयी

कवि परिचयः समादृत कवि-आलोचक, संपादक और संस्कृतिकर्मी अशोक वाजपेयी का जन्म 16 जनवरी 1941 को तत्कालीन मध्य प्रदेश राज्य के दुर्ग में एक संपन्न सुशिक्षित परिवार में हुआ। पिता सागर विश्वविद्यालय में डिप्टी रजिस्ट्रार थे और नाना डिप्टी कलक्टर थे। उनकी आरंभिक शिक्षा लालगंज सरकारी विद्यालय में हुई, फिर इंटर और बी.ए. की परीक्षा सागर विश्वविद्यालय से पास की। एम.ए. की पढ़ाई सेंट स्टीफ़ेंस कॉलेज, दिल्ली से की और फिर दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली में अध्यापन करने लगे। उन्होंने आईएएस की परीक्षा 1965 में पास की और 1966 में उनका विवाह समादृत साहित्यकार नेमिचंद्र जैन की सुपुत्री रश्मि जैन से हुआ। उनके प्रशासनिक जीवन का एक लंबा समय मध्य प्रदेश, विशेषकर भोपाल में बीता जहाँ उन्होंने राज्य के संस्कृति सचिव के रूप में भी सेवा दी और कार्यकाल के अंतिम दौर में भारत सरकार के संस्कृति विभाग के संयुक्त सचिव के रूप में दिल्ली में कार्य किया। उन्होंने महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के प्रथम उप-कुलपति और ललित कला अकादेमी के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया। उन्होंने भारत भवन, मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद, उस्ताद

अल्लाउद्दीन ख़ाँ संगीत अकादेमी, ध्रुपद केंद्र, चक्रधर नृत्य केंद्र, उर्दू अकादेमी, कालिदास अकादेमी, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, रज़ा फ़ाउंडेशन जैसी कई संस्थाओं की स्थापना और संचालन में योगदान किया है।

उनके काव्य-कर्म का आरंभ स्कूली दिनों से हो गया था और 16-17 की आयु तक आते प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे थे। पहला कविता-संग्रह 'शहर अब भी संभावना है' 25 वर्ष की आयु में 1966 में प्रकाशित हुआ। तब से उनके एक दर्जन से अधिक काव्य-संग्रह और उतने ही काव्य-संचयन प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कविताओं के अनुवाद विभिन्न भारतीय और विदेशी भाषाओं में प्रकाशित हुए हैं।

आलोचना के क्षेत्र में उनका प्रवेश 'लेखक की प्रतिबद्धता' शीर्षक लेख के साथ हुआ। वह देवीशंकर अवस्थी और नामवर सिंह की प्रेरणा से इस ओर प्रवृत्त हुए और आलोचना में अपनी बहुलतावादी दृष्टि और आलोचना के जनतंत्र के लिए विशेष रूप से चिह्नित किए जाते हैं। उनकी पहली आलोचना-कृति 'फ़िलहाल' 1970 में प्रकाशित हुई और तब से उनकी एक दर्जन से अधिक आलोचना एवं निबंध कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

उनकी प्रतिष्ठा एक संपादक की भी रही है जहाँ उन्होंने कई पत्र-पत्रिकाओं, कृतित्व-व्यक्तित्व, कविता-संग्रहों और रचना-संचयनों का संपादन किया है। उन्होंने चेस्लाव मिलोष, विस्साव शिंबोर्स्का,

जिबिग्न्यु हर्बर्ट, तादयुश रोज़विच सरीखे कवियों की कविताओं का हिंदी अनुवाद किया है।

अशोक वाजपेयी एक संस्कृतिकर्मी और आयोजक के रूप में भी विशिष्ट उपस्थिति रखते हैं। भोपाल में उनके प्रशासनिक कार्यकाल के दिनों में उनके द्वारा हज़ार से अधिक आयोजन कराए गए जो साहित्य और कला की विभिन्न विधाओं के प्रसार में अद्वितीय योगदान कहा जाता है। उस दौर में 'भारत-भवन' जैसे साहित्य-कला-संस्कृति आयोजन का पर्याय ही हो गया था। बाद के दिनों में रज़ा फ़ाउंडेशन एवं अन्य संस्थाओं के माध्यम से दिल्ली में भी उनकी सांस्कृतिक गतिविधियाँ बनी रही हैं।

साहित्य, राजनीति और समाज के समसामयिक मुद्दों पर लेखन, मौखिक वक्तव्य और खुली भागीदारी के रूप में उनका ज़रूरी दख़ल बना रहा है।

प्रमुख कृतियाँ

काव्य-संग्रह: शहर अब भी संभावना है (1966), एक पतंग अनंत में (1984), अगर इतने से (1986), तत्पुरुष (1989), कहीं नहीं वहीं (1991), बहुरि अकेला (1992), थोड़ी सी जगह (1994), आविन्यों (1995), जो नहीं है, अभी कुछ और (1998), समय के पास समय (2000), इबारत से गिरी मात्राएँ (2002), कुछ रफ़ू कुछ थिगड़े (2004), उम्मीद का दूसरा नाम (2004), दुख चिट्ठीरसा है (2008), कहीं कोई दरवाज़ा (2013)

आलोचना/निबंध/लेख: फ़िलहाल (1970), कुछ पूर्वग्रह (1986), समय से बाहर (1994), कविता का गल्प (1996), सीढ़ियाँ शुरू हो गई हैं (1996), बहुरि अकेला (1999), कभी-कभार (2000)
संपादन: समवेत, पहचान, पूर्वग्रह, बहुवचन, कविता एशिया, समास आदि पत्रिकाएँ। कुमार गंधर्व, कला विनोद, प्रतिनिधि कविताएँ (मुक्तिबोध), पुनर्वसु, निर्मल वर्मा, टूटी हुई बिखरी हुई (शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं का एक चयन), साहित्य विनोद, कविता का जनपद, जैनेंद्र की आवाज़, परंपरा की आधुनिकता, शब्द और सत्य, तीसरा साक्ष्य, सन्नाटे का छंद (अज्ञेय की कविताएँ), स्वच्छंद, आत्मा का ताप, संशय के साए (कृष्ण बलदेव वैद संचयन)
उन्हें काव्य-संग्रह 'कहीं नहीं वहीं' के लिए 1994 के साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। वह दयावती मोदी कवि शेखर सम्मान, कबीर सम्मान के साथ ही फ्रांस और पोलैंड के सरकारी सम्मानों से नवाज़े गए हैं।

***

मैं वहीं से आऊँगा
जहाँ से वे आए थे :
जहाँ पानी और नमक का उद्गम है,
नदी को छूती न छूती वृक्षों की शाखाएँ हैं,
बूढ़ों के चेहरों पर तकलीफ़ और सपने दोनों चमकते हैं,

जहाँ बच्चों को प्रतीक्षा रहती है ताज़े फलों और गर्म रोटियों की सुगंध की।
सपनों पर नाम या पता नहीं लिखा होता,
फिर भी मुझे पता है कि उन पुरखों के हैं,
जिन्होंने किसी झील के किनारे सुस्ताते हुए सोचा था
कि राहत, हिम्मत और आकांक्षा पर सबका हक़ है
और सच में, जैसे जल में, सबका हिस्सा है।

मैं वहीं से आऊँगा :
जहाँ से वे आए थे–
मैं याद करूँगा वे बहसें जो चौक-चौबारों में हुई थीं
जीवन, आचरण और मर्यादा के बारे में
और उस अंत:करण को, जो सच बोलने की ज़िद पर अड़ा रहा
अकेले पड़ते और घोड़े की पूँछ से बाँधकर घिसटे जाने के बावजूद।
मैं वहीं जाऊँगा
जहाँ माना जाता है कि सच अकेले का भी होता है और सबका भी
और उसे जितना पाया जाता है उतना ही रचा।
मैं वहीं जाऊँगा जहाँ एक समय गढ़े गए देवता,
स्वर्ग और नरक,

अंतरिक्ष में गूँजते अहरह गान।
वहीं सहायता और करुणा के गलियारे और उम्मीद के कंगूरे।
मैं जाऊँगा वहाँ जहाँ
लोग दूसरों को अँधेरी सरहदों के पार उजालों में छोड़कर
अपनी घुप्प रात में गुम हो जाते हैं।
मैं वहीं से आऊँगा
जहाँ से वे आए थे :
खुदे जाने के लिए पत्थर की तरह,
सुलगने के लिए कोयले की तरह,
राख हो जाने के लिए आग की तरह।
मैं वहीं से आऊँगा
जहाँ प्रार्थना में डूबे लोग
अत्याचार के विरुद्ध उठी चीख़ को अनसुना नहीं करते,
जहाँ कोई भी पुकारे दु:खी या कोयल या राह भूल गई बुढ़िया
उसे उत्तर मिलता है
मैं वहीं से...

*****

उस दिन का जंगल

-**लीलाधर जगूड़ी**

कवि परिचयः समकालीन कविता के समादृत कवि लीलाधर जगूड़ी का जन्म 1 जुलाई 1944 को टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखंड में हुआ। ग्यारह वर्ष की आयु में घर से भाग गए थे और आजीविका संघर्ष में रत रहे। फ़ौज में सिपाही की नौकरी भी की। बाद में उत्तर प्रदेश की सूचना सेवा में चयन हुआ जहाँ सरकारी पत्रिकाओं का संपादन किया। सेवानिवृत्ति के बाद उत्तराखंड के प्रथम सूचना सलाहकार और उत्तराखंड संस्कृति, साहित्य एवं कला परिषद के पहले उपाध्यक्ष बने। केंद्रीय साहित्य अकादेमी के सामान्य सभा से संबद्धता रही है।

ओम निश्चल के शब्दों में–"...लीलाधर जगूड़ी उन कवियों में आते हैं, जिन्होंने अनुभव और भाषा के बीच कविता को जीवित रखा है। अनुभव के आकाश में उड़ान भरने वाले वह हिंदी के एक मात्र ऐसे कवि हैं जिनके यहाँ शब्द किसी कौतुक या क्रीड़ा का उपक्रम नहीं हैं, वे एक सार्थक सर्जनात्मकता की कोख से जन्म लेते हैं।" कविता में नवीनता को उनके ध्येय की तरह लक्षित किया जाता है और यह नवीनता अनुभव, भाषा, संवेदना, कथ्य–सभी में नज़र आती है। यह भी कहा गया है कि समकालीन कवियों में भाषा के सर्वाधिक नए प्रयोग उनके घर ही पाए जाते हैं।

‘शंखमुखी शिखरों पर’ (1964), ‘नाटक जारी है’ (1972), ‘इस यात्रा में’ (1974), ‘रात अब भी मौजूद है’ (1976), ‘बची हुई पृथ्वी’ (1977), ‘घबराए हुए शब्द’(1981), ‘भय भी शक्ति देता है’ (1991), ‘अनुभव के आकाश में चाँद’(1994), ‘महाकाव्य के बिना’ (1995), ‘ईश्वर की अध्यक्षता में’ (1999), ‘जितने लोग उतने प्रेम’ (2013), ‘ख़बर का मुँह विज्ञापन से ढका है’ (2014) उनके काव्य-संग्रह हैं। गद्य में उनका नाटक ‘पाँच बेटे’ और निबंध-संग्रह ‘रचना प्रक्रिया से जूझते हुए’ प्रकाशित है।
उन्हें ‘अनुभव के आकाश में चाँद’ कविता-संग्रह के लिए 1997 में साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने 2004 में उन्हें पद्मश्री से अलंकृत किया है। वर्ष 2018 में ‘जितने लोग उतने प्रेम’ कविता-संग्रह के लिए उन्हें वर्ष 2018 के व्यास सम्मान से नवाज़ा गया है।

***

पिछले पतझर में हम कितने रोशन थे जैसे उजाले के दो पेड़

घास बड़ी होती है तो आपस में दोस्त हो जाती है
पेड़ बड़े होते हैं तो अकेले हो जाते हैं
(अपने-आपमें उलझे हुए)

पुराने पेड़ों के सान्निध्य में चिड़ियों के घोंसले थे
पुराने पानी में नए पानी के घुसने का शोर था

आसमान थोड़े-से बादलों के पीछे पूरा छिपा हुआ था
और हम दो पेजों की तरह चिपके हुए थे
समय हमारे बीच चाक़ू की तरह नहीं घुसा था

हमारे चारों और, हज़ारों वर्ष पुराना जंगल था
देखकर जिसने महसूस किया आने वाला वसंत

दूर। उस दिन वह ऐसा जगा
हमारे लावण्य-भरे चेहरे खाकर
कि रातों-रात अपनी खाल का रंग बदलने लगा।

*****

मोचीराम

-धूमिल

कवि परिचयः धूमिल कवि का पूरा नाम सुदामा पांडेय धूमिल है। उपनाम :'धूमिल'। उनका जन्म 9 नवंबर 1936 को वाराणसी, उत्तर प्रदेश में हुआ था। साठोत्तरी कविता में 'धूमिल' का उदय एक महत्त्वपूर्ण घटना की तरह हुआ। धूमिल के रूप में नई कविता और अकविता के किसी संक्रमण सुरंग से हाथ में औज़ार लिए हिंदी कविता का एक वास्तविक मज़दूर-किसान सामने आया था जिसने अपने औज़ार हथियार की तरह समकालीन कविता-विमर्श पर तान दिए थे। लेकिन उसके औज़ार हथियार नहीं हैं। वह स्वयं आगाह करते हुए कहते हैं कि "शब्द और शस्त्र के व्यवहार का व्याकरण अलग-अलग है। शब्द अपने वर्ग-मित्रों में कारगर होते हैं और शस्त्र अपने वर्ग-शत्रु पर।" उनका आक्रोश अकविता, क्रुद्ध युवा पीढ़ी, श्मशानी या भूखी पीढ़ी के आक्रोश से इस मायने में भिन्न था कि इसके मूल में शोषण से मुक्ति की प्रबल आकांक्षा मौजूद थी। उनका आक्रोश एक पूरी पीढ़ी, वर्ग और युग का आक्रोश भी था जो कविता, विमर्श, राजनीति में मुखर हो रहा था।

'धूमिल' उपनाम उन्होंने ख़ुद चुना था। उनका मूल नाम सुदामा पांडेय था। उनका जन्म 9 नवंबर 1936 को वाराणसी के खेवली ग्राम में एक सामान्य किसान परिवार में हुआ था। परिवार का जीविकोपार्जन किसानी और दुकानी पर निर्भर था। उनकी आरंभिक शिक्षा-दीक्षा गाँव में ही हुई। तेरह वर्ष की अल्पायु में उनका विवाह भी संपन्न हो गया। वह उच्च शिक्षा का कुछ सोचते, तभी पिता की मृत्यु से परिवार का उत्तरदायित्व

उनके कँधे पर आ गया। उन्होंने कलकत्ता के एक लोहे के कारख़ाने में मज़दूरी की, फिर कुछ समय बाद एक ट्रेड कंपनी की नौकरी करने लगे। बाद में उन्होंने आईटीआई से इलेक्ट्रिक डिप्लोमा किया और अनुदेशक की नौकरी करने लगे। इन कुछ रोज़गार अवसरों से गुज़रते व्यवस्था और पूँजीवादी संरचना के प्रति उनका आक्रोश गहरा ही होता गया। व्यवस्था-विरोध उनके स्वभाव और उनकी कविता की एक विशेष प्रवृत्ति ही रही। उनकी कविताओं में यहाँ-वहाँ नज़र आती 'अराजकता' युगीन प्रभाव की देन भी है। नक्सलबाड़ी स्वच्छंदता का प्रभाव उस दौर के कई निम्नमध्यमवर्गीय कवियों में प्रकट हुआ है। 'धूमिल' के दृष्टिकोण की कुछ सीमितता उच्च शिक्षा और एक्सपोज़र के अभाव के कारण भी है। धूमिल की अपनी विशिष्ट काव्य-भाषा है जिसमें आमफ़हम शब्दों का बहुलता से प्रयोग हुआ है। उनकी कविताओं की सफलता और लोकप्रियता में बिंबों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जो प्रखर और ताज़े हैं। उनकी काव्य-भाषा की एक अन्य विशेषता बार-बार प्रकट होने वाले सामान्यीकरण हैं जो उनकी कविता में 'ड्रामा' के तत्वों का प्रवेश कराते हैं। देश की आज़ादी से मोहभंग उनकी कविताओं में अत्यंत तीक्ष्णता से अभिव्यक्त हुआ है और ये कविताएँ उन तमाम नैतिकताओं, भद्रताओं से लोहा लेती हैं जिनका इस्तिमाल शासन अपनी रक्षा के लिए करता है। उनकी भाषा की सरलता और प्रवाह उन्हें लोकप्रिय कविताओं में शुमार कराती है। उनके विषयों में आम जीवन, उसके संघर्ष और प्रतिरोध के सभी चित्र मौजूद हैं।

धूमिल का 39 वर्ष की अल्पायु में ब्रेन ट्यूमर से निधन हो गया। उनके जीवनकाल में उनका एक ही काव्य-संग्रह 'संसद से सड़क तक' (1972) प्रकाशित हो सका था। मरणोपरांत उनके दो अन्य संग्रह 'कल सुनना

मुझे' (1977) और 'सुदामा पाँडे का प्रजातंत्र' (1984) संकलित हुए। गद्य विधा में उनकी सात कहानियाँ और दर्जनाधिक निबंध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। उनकी डायरी, पत्रों और उनपर लिखे गए संस्मरणों से उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। इसके साथ ही ये उनकी कविताओं तक पहुँच के 'टूल्स' के रूप में भी काम आते हैं। इसके साथ ही उन्होंने अनुवाद और नाट्यलेखन में भी अपनी प्रतिभा दिखाई।

उनके मरणोपरांत 'कल सुनना मुझे' काव्य संग्रह के लिए उन्हें वर्ष 1979 के साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 10 फ़रवरी 1975 को लखनऊ, उत्तर प्रदेश में उनका निधन हुआ।

***

राँपी से उठी हुई आँखों ने मुझे
क्षण-भर टटोला
और फिर

जैसे पतियाए हुए स्वर में
वह हँसते हुए बोला–
बाबूजी सच कहूँ–मेरी निगाह में
न कोई छोटा है

न कोई बड़ा है
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है

जो मेरे सामने

मरम्मत के लिए खड़ा है।
और असल बात तो यह है
कि वह चाहे जो है

जैसा है, जहाँ कहीं है
आजकल

कोई आदमी जूते की नाप से
बाहर नहीं है

फिर भी मुझे ख़्याल रहता है
कि पेशेवर हाथों और फटे जूतों के बीच

कहीं न कहीं एक आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं,

जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है।

यहाँ तरह-तरह के जूते आते हैं
और आदमी की अलग-अलग 'नवैयत'

बतलाते हैं
सबकी अपनी-अपनी शक्ल है

अपनी-अपनी शैली है
मसलन एक जूता है :

जूता क्या है—चकतियों की थैली है
इसे एक आदमी पहनता है
जिसे चेचक ने चुग लिया है
उस पर उम्मीद को तरह देती हुई हँसी है
जैसे 'टेलीफ़ून' के खंभे पर
कोई पतंग फँसी है
और खड़खड़ा रही है
'बाबूजी! इस पर पैसा क्यों फूँकते हो?'
मैं कहना चाहता हूँ
मगर मेरी आवाज़ लड़खड़ा रही है
मैं महसूस करता हूँ—भीतर से
एक आवाज़ आती है—'कैसे आदमी हो
अपनी जाति पर थूकते हो।'
आप यक़ीन करें, उस समय
मैं चकतियों की जगह आँखें टाँकता हूँ
और पेशे में पड़े हुए आदमी को
बड़ी मुश्किल से निबाहता हूँ।
एक जूता और है जिससे पैर को
'नाँधकर' एक आदमी निकलता है
सैर को

न वह अक्लमंद है
न वक़्त का पाबंद है

उसकी आँखों में लालच है
हाथों में घड़ी है

उसे जाना कहीं नहीं है
मगर चेहरे पर

बड़ी हड़बड़ी है
वह कोई बनिया है

या बिसाती है
मगर रौब ऐसा कि हिटलर का नाती है

'इशे बाँद्धो, उशे काट्टो, हियाँ ठोक्को, वहाँ पीट्टो
घिश्शा दो, अइशा चमकाओ, जूत्ते को ऐना बनाओ

...ओफ़्फ़! बड़ी गर्मी है' रूमाल से हवा
करता है, मौसम के नाम पर बिसूरता है

सड़क पर 'आतियों-जातियों' को
बानर की तरह घूरता है

गरज़ यह कि घंटे भर खटवाता है
मगर नामा देते वक़्त

साफ 'नट' जाता है

'शरीफ़ों को लूटते हो’ वह गुर्राता है
और कुछ सिक्के फेंककर
आगे बढ़ जाता है

अचानक चिंहुककर सड़क से उछलता है
और पटरी पर चढ़ जाता है

चोट जब पेशे पर पड़ती है
तो कहीं-न-कहीं एक चोर कील

दबी रह जाती है
जो मौक़ा पाकर उभरती है

और अँगुली में गड़ती है
मगर इसका मतलब यह नहीं है

कि मुझे कोई ग़लतफ़हमी है
मुझे हर वक़्त यह ख़्याल रहता है कि जूते
और पेशे के बीच
कहीं-न-कहीं एक अदद आदमी है

जिस पर टाँके पड़ते हैं
जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट

छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है

और बाबूजी! असल बात तो यह है कि ज़िंदा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है

तो रामनामी बेचकर या रंडियों की
दलाली करके रोज़ी कमाने में

कोई फ़र्क़ नहीं है
और यही वह जगह है जहाँ हर आदमी

अपने पेशे से छूटकर
भीड़ का टमकता हुआ हिस्सा बन जाता है

सभी लोगों की तरह
भाषा उसे काटती है

मौसम सताता है
अब आप इस बसंत को ही लो,

यह दिन को ताँत की तरह तानता है
पेड़ों पर लाल-लाल पत्तों के हज़ारों सुखतल्ले

धूप में, सीझने के लिए लटकाता है
सच कहता हूँ–उस समय

राँपी की मूठ को हाथ में सँभालना
मुश्किल हो जाता है

आँख कहीं जाती है
हाथ कहीं जाता है

मन किसी झुँझलाए हुए बच्चे-सा
काम पर आने से बार-बार इंकार करता है

लगता है कि चमड़े की शराफ़त के पीछे
कोई जंगल है जो आदमी पर

पेड़ से वार करता है
और यह चौंकने की नहीं, सोचने की बात है

मगर जो ज़िंदगी को किताब से नापता है
जो असलियत और अनुभव के बीच

ख़ून के किसी कमज़ात मौके पर कायर है
वह बड़ी आसानी से कह सकता है

कि यार! तू मोची नहीं, शायर है
असल में वह एक दिलचस्प ग़लतफ़हमी का

शिकार है
जो यह सोचता कि पेशा एक जाति है

और भाषा पर
आदमी का नहीं, किसी जाति का अधिकार है

जबकि असलियत यह है कि आग
सबको जलाती है सच्चाई

सबसे होकर गुज़रती है
कुछ हैं जिन्हें शब्द मिल चुके हैं

कुछ हैं जो अक्षरों के आगे अंधे हैं
वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं

और पेट की आग से डरते हैं
जबकि मैं जानता हूँ कि 'इनकार से भरी हुई एक चीख़'

और 'एक समझदार चुप'
दोनों का मतलब एक है–

भविष्य गढ़ने में, 'चुप' और 'चीख़'
अपनी-अपनी जगह एक ही क़िस्म से

अपना-अपना फ़र्ज़ अदा करते हैं।

*****

भावार्थः

तुलसी के दोहे

1.तुलसीदास जी कहते हैं कि सुंदर वेष देखकर न केवल मूर्ख अपितु बुद्धिमान मनुष्य भी धोखा खा जाते है। सुंदर मोर को ही देख लो उसका वचन तो अमृत के समान है लेकिन आहार साँप का है।

2. तुलसीदास जी कहते हैं कि भगवान श्रीराम का स्मरण होने के समय, धर्म युद्ध में शत्रु से भिड़ने के समय, दान देते समय और श्री गुरु के चरणों में प्रणाम करते समय जिनके शरीर में विशेष हर्ष के कारण रोमांच नहीं होता, वे जगत में व्यर्थ ही जीते हैं।

3. तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसको एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती थी अर्थात जिसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी, उसको भला कौन चाहता और किस लिए चाहता। उसी तुलसी को ग़रीब-निवाज श्री राम जी ने आज महँगा कर दिया अर्थात उसका गौरव बढ़ा दिया।

4. गोस्वामी तुलसीदास जी कहते है कि गंगा, यमुना, सरस्वती और सातों समुद्र ये सब जल से भले ही भरे हुए हो, पर पपीहे के लिए तो स्वाति नक्षत्र के बिना ये सब धूल के समान ही हैं; क्योंकि पपीहा केवल स्वाति नक्षत्र में बरसा हुआ जल ही पीता है। भाव यह है कि सच्चे प्रेमी अपनी प्रिय वस्तु के बिना अन्य किसी

वस्तु को कभी नहीं चाहता, चाहे वह वस्तु कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो।

5. इस दोहे के माध्यम से तुलसीदास जी यह कहना चाहते है कि मुखिया बिल्कुल इंसान के मुख की तरह होना चाहिए। जैसे मुख खाना अकेला खाता है लेकिन शरीर के सभी अंगों का बराबर पोषण करता है। उसी तरह मुखिया को अपना काम इस तरह से करना चाहिए की उसका फल सब में बंटे।

6. यदि तुम अपने हृदय के अंदर और बाहर दोनों ओर प्रकाश चाहते हो तो राम-नाम रूपी मणि के दीपक को जीभ रूपी देहली के द्वार पर धर लो। दरवाजे की देहली पर यदि दीपक रख दिया जाए तो उससे घर के बाहर और अंदर दोनों ओर प्रकाश हो जाया करता है। इसी प्रकार जीभ मानो शरीर के अंदर और बाहर दोनों ओर की देहली है। इस जीभ रूपी देहली पर यदि राम-नाम रूपी मणि का दीपक रख दिया जाय तो हृदय के बाहर और अंदर दोनों ओर अवश्य प्रकाश हो ही जाएगा।

7. किसी की मीठी बातों और किसी के सुंदर कपड़ों से, किसी पुरुष या स्त्री के मन की भावना कैसी है यह नहीं जाना जा सकता है क्योंकि मन से मैले सूर्पनखा, मारीच, पूतना और रावण के कपड़े बहुत सुन्दर थे। इसीलिए दिखावे से आकर्षित मत हों।

8. इस दोहे के माध्यम से तुलसीदास कहते हैं कि हमारा शरीर एक खेत के समान है और मन इस खेत का किसान है। किसान जैसे बीज खेत में बोता है अंत में उसे वैसे ही फल मिलते हैं।

इसी तरह अपने पाप या पुण्य का फल भी व्यक्ति को उसके कर्मों के अनुसार ही मिलता है।

9. तुलसीदास कहते हैं कि रस और रसना (जीभ) दोनों पति-पत्नी हैं । समस्त रसों का भोग रसना के माध्यम से ही होता हैं और राम नाम रूपी रस तो रसना आत्मविभोर ही हो उठती है। तुलसी कहते हैं कि यह मुख ही संपूर्ण परिवार है। जिसमें दाँत कुटम्बी हैं, मुख सुन्दर घर है। श्री शंकर के प्रिय 'रा' और 'म' - ये दोनों अक्षर दो मनोहर बालक हैं और यहाँ सहज स्नेह ही सम्पत्ति है।

10. तुलसीदास जी कहते हैं कि भोजन, वस्त्र, पुत्र और स्त्री-सुख तो पापी के घर में भी हो सकते हैं; पर सज्जनों का समागम भगवान और राम रूपी धन की प्राप्ति ये दोनों बड़े दुर्लभ हैं। भाव यह है कि जिसके बड़े भाग्य होते हैं उसे ही भगवद्भक्ति तथा सज्जन पुरुषों की संगति प्राप्त होती है।

11. तुलसीदास जी कहते हैं कि अच्छी संगति से मनुष्य अच्छा बनता है और बुरी संगति से वह बुरा बन जाता है। वे उदाहरण देते हुए समझाते हैं कि हे लोगों ! देखो, जो लोहा नाव में लगने से सबको पार उतारने वाला और सितार में लगने से मधुर संगीत सुनाकर सुख देने वाला बन जाता है, वही तलवार और तीर में लगते ही जीवों के प्राण का घातक हो जाता है।

12. गोस्वामी जी कहते हैं कि शरीर मानो खेत है, मन मानो किसान है। जिसमें यह किसान पाप और पुण्य रूपी दो प्रकार के बीजों को बोता है। जैसे बीज बोएगा वैसे ही इसे अंत में फल

काटने को मिलेंगे। भाव यह है कि यदि मनुष्य शुभ कर्म करेगा तो उसे शुभ फल मिलेंगे और यदि पाप कर्म करेगा तो उसका फल भी बुरा ही मिलेगा।

मीराबाई के पदः

1. मीराबाई कहती हैं की हे बावरे मन तू क्यों भटकता रहता है तू भगवन के चरणों का ध्यान करा कर। इस संसार में जो भी कुछ दिखाई दे रहा है उन सभी का एक दिन अंत होना निश्चित है। यह शरीर जो अपने ऊपर बेकार ही अभिमान करता रहता है यह भी एक दिन मिट्टी में मिल जाएगा। यह माया रूपी संसार चौसर के एक खेल की तरह है। इस खेल की बाज़ी हमारी मृत्यु के बाद खत्म हो जाती है। जैसे एक समय आने पर चौसर का खेल खत्म हो जाता है। उसी प्रकार यह माया रूपी संसार नष्ट हो जायेगा। यदि हमें मेरे प्रभु श्री कृष्ण को प्राप्त करना है तो इसके लिए सिर्फ भगवा वस्त्र को धारण करना काफी नहीं। अगर हम पुरे दोहे के अर्थ को आसान शब्दों में समझे तो मीरा बाई कहती हैं की भगवान को प्राप्त करने के लिए सन्यासी बनना काफी नहीं अगर भगवान को प्राप्त करना है तो पुरे तन और मन से भगवान की भक्ति करनी होगी। नहीं बिना भगवान प्राप्त किये हमें बार-बार इस मोह-माया रूपी संसार में जन्म लेना होगा।

2. इस पद में मीरा कहती हैं की मैं पैरों में घुंघरू बांधकर नाचती हूँ और मैं मेरे प्रभु गिरधर नागर की दासी हो गई हूँ। लोग मुझे अब पागल कहकर बुलाने लगे हैं। यहाँ तक की मेरे रिश्तेदार अब

मुझे कुलनाशिनी कहकर बुलाने लगे हैं। मीराबाई आगे कहती हैं की राणा जी ने मेरे प्रेम को परखने के लिए मुझे विष का प्याला भेजा था लेकिन मैं प्रभु भक्ति में मगन वह विष का प्याला हँसते-हँसते पी गई। क्योंकि जो प्रभु भक्ति में लीन रहते हैं प्रभु हमेशा ही उनकी रक्षा करते हैं। मेरे प्रभु अविनाशी हैं और मैं उनकी परम भक्त हूँ।

3. मैं अपने प्रभु को पत्र कैसे लिखूं क्योंकि पत्र लिखने के लिए जैसे कलम उठाती हूँ तो मेरे हाथ कांपने लगते हैं मेरे आँखों में आंसू छलक पड़ते हैं। बीती बातों को याद कर मैं रोने लगती हूँ। और मुझे पत्र लिखने की आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि मेरे प्रभु मेरी पीड़ा और मेरी स्थिति के बारे में सब कुछ जानते हैं।

4. इस दोहे में मीराबाई कह रही हैं की हे मेरे गोविन्द, हे मेरे श्री कृष्ण आप मेरे और सभी लोगों के संकट दूर करें। जैसे आपने महाभारत काल में कौरव और पांडवों के सामने द्रौपदी की लाज रखी। आप द्रौपदी की लाज बचाने के लिए उसके चीर को बढ़ाते गए। जैसे आपने अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा हेतु नरसिंह का अवतार धरा और हिरण्य कश्यप का वध किया। ठीक वैसे ही आपने पानी में डूबते हुए एक हाथी की रक्षा की। हे प्रभु ठीक उसी तरह अपनी दासी मीरा के दुखों को दूर करो।

5. मीराबाई कहती हैं की मैं कृष्ण भक्ति में डूबकर हमेशा ही कृष्ण के गुणों का गुणगान करती हूँ और भजन करते हुए मगन हो जाती हूँ। मेरी कृष्ण भक्ति से परेशान होकर राणा जी ने सांप

को पिटारे में बंद करके मेरे पास भेजा है और अपने सेवकों से कहा है की यह पीटारा मीराबाई के हाथ में देना। लेकिन सखी जब मैंने पिटारा खोलकर देखा तो वह सांप एक शालिग्राम की मूर्ति में बदल गया। इतना ही नहीं इसके बाद राणा जी ने मेरे लिए जहर का प्याला भेजा पर हे सखी भगवान की कृपा देखो वह जहर से भरा प्याला अमृत बन गया। और जब मैंने उस प्याले को पिया तो मैं अमर हो गई। राणा जी तो यहाँ भी ना रुके मेरे सोने के लिए उन्होंने काँटों की सेज बनाई और मुझे कहा तुम इसमें सो जाओ। हे सखी जब मैं उस सेज पर सोने गई तो वह मेरे प्रभु गिरधर नागर की कृपा से फूलों की सेज बन गई। मीराबाई दोहे में आगे कहती हैं की श्री कृष्ण ने हमेशा ही मेरी सहायता की है और मेरे कष्टों को दूर किया है। इसलिए मैंने अपना जीवन श्री कृष्ण के चरणों में न्योछावर कर दिया है।

वृंद के दोहोः

1. इस दोहे में कवि वृन्द जी अभ्यास करने के महत्व को समझाते हुए बताया है कि किसी भी चीज को हासिल करने के लिए अभ्यास करना या साधना करना बेहद जरूरी है क्योंकि अभ्यास या साधना करने से ही असाध्य कार्य अथवा कठिन से कठिन काम भी सिद्ध हो जाते हैं।

इस दोहे में कवि वृन्द जी ने यह भी बताया है कि निरंतर अभ्यास करने अथवा कोशिश करने से मंदबुद्धि लोग, अर्थात एक अज्ञानी पुरुष भी ज्ञानी बन जाता है। इसलिए जीवन में सफल होने के

लिए साधना बेहद जरूरी है अर्थात साधना ही सफलता की कुंजी है क्योंकि बिना साधना यानि कि बिना प्रयास किए कोई भी काम सिद्द नहीं होता है।

2. इस दोहे में कवि वृन्द जी कहते हैं कि हर व्यक्ति को अपनी हालत देखकर ही खर्च करना चाहिए अर्थात हर किसी को अपनी स्थिति से परिचित होना चाहिए और अपनी आमदनी के मुताबिक ही खर्च करना चाहिए।

3. इस दोहे में कवि वृन्द जी विद्या रुप धन की महानता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि विद्या रूपी धन आसानी से नहीं मिलता अर्थात इसको प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम करना होता है। बिना मेहनत किए कोई भी इस विद्या रूपी अनमोल धन की प्राप्ति नहीं कर सकता और न ही यह विरासत से मिलने वाली संपत्ति है।

4. इस दोहे में महाकवि वृन्द जी कहते हैं कि हर व्यक्ति की बात कहने का तरीका अलग-अलग होता है। एक तरीका वो होता है जिससे कोई व्यक्ति मोहित हो जाता है वहीं दूसरा तरीका वो है जिससे किसी को गुस्सा आ जाता है। वहीं अगर कोई व्यक्ति बिना सोच-समझकर किसी बात को करता है या फिर किसी अन्य व्यक्ति का अपनी बात से दिल दुखाता है तो इससे दूसरों का गुस्सा बढ़ जाता है।

5. इस दोहे में महान कवि वृन्द जी ने नकली वेष धारण कर झूठे दिखावे पर पर बखान करते हुए कहा है कि कोई भी व्यक्ति

चाहे वेष धारण कर शूर वीर बनने की कितनी भी कोशिश क्यों नहीं कर ले, लेकिन वे कभी शूर-वीर नहीं बन सकते हैं क्योंकि वीरता जन्मजात होती है, व्यक्ति के अंदर से निखरी हुई भावना होती है।

6. इस दोहे में महान कवि वृन्द जी ने धन की लिसता के बारे में सुंदर वर्णन करते हुए कहा है कि इंसान की जिंदगी में धन, किसी खेल में गेंद के बराबर हैं क्योंकि धन और गेंद का स्वभाव एक जैसा होता है।

7. कवि वृन्द जी के इस दोहे के माध्यम से यह संदेश दे रहे हैं कि हमें दीन अर्थात गरीबों लोगों की मदद् करनी चाहिए, दीनों को दान करना चाहिए ताकि उसकी गरीबी मिट सके। वहीं दवाई सिर्फ उसी व्यक्ति को देना चाहिए जिसे औषधि की जरूरत हो अर्थात वह बीमार हो।

8. इस दोहे में कवि वृन्द जी कहते हैं कि सत्य और असत्य घटना के बीच अंतर होता है। वहीं अगर कोई कुछ बात बोले तो वह सच हो या फिर झूठ पहले हमें उसे सुनना चाहिए और फिर पता लगने के बाद ही सत्य या झूठ पर यकीन करना चाहिए।

*****